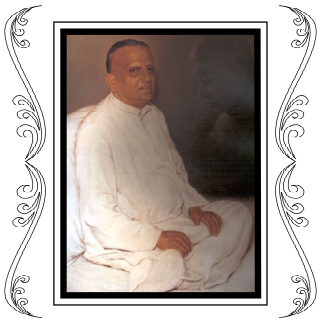

पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्र सोगानीजी द्वारा साधर्मीओं को लिखे हुए आध्यात्मिक पत्र

(२७)

कलकत्ता
१-४-१९६२

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः

धर्मस्नेही... शुद्धात्म सत्कार।

आपका कार्ड व पत्र मिले। मानस्तंभके शुभ प्रसंगपर भी मैं वहाँ नहीं आ सकूँगा, इसका कारण पत्रके साथ भेजी गई शादीकी पत्रिकासे मालूम होगा। बडे पुत्रकी शादी ता.१६-४ की है; पुण्यवानोंको शुभप्रसंगका योग है, उन्हें अशुभप्रसंगपर बुलाना ठीक नहीं है, फिर भी लौकिक व्यवहारवश दो पत्रिकाएँ भिझवाई हैं। वहाँ से आये पश्चात् परिणति कीचड़में ही फँसी रहती है, जैसी योग्यता है वैसे ही निमित्तों मध्ये रहना हो रहा है। प्रत्यक्ष दुःखसमूहमें वेदन चलता है, परंतु एक ही झटके में हटना नहीं होता है। रस बिलकुल नहीं है, खेद वर्तता है। फिर भी ईधरसे निवृत्तियोग नहीं बैठता; यह भी पूर्व कर्मोंकी दैन ही है। अखण्डकी अखण्डताका प्रयास भी शिथिल-सा ही रहता है। हे गुरुदेव! आपमें तीव्र भक्तिका उदय होनेसे ही इधरके दुःखका इलाज होगा, दूसरा कोई इलाज नहीं, यह भलीभाँति जानता हूँ।

अधिक क्या लिखूँ? सोनगढकी दयाका पात्र हूँ। आपके उलाहने सुनने योग्य हूँ। करीब एक माहसे कुछ शारीरिक अस्वस्थ्यता भी चल रही है।

हे प्रभु! शीघ्र इधरसे निवृत्ति होकर गुरुचरणोंमें रहना होवे, जिन्होंने अखण्ड गुरुवासमें चरना सिखाया है, यह ही विनती।

आप सबसे क्षमाका इच्छुक व आपकी वात्सल्यताका आभारी।

निहालभाई

सुप्रभात

जन्म-मरण एवं समस्त दुःख का मूलकारण ऐसे मिथ्यात्वरूपी अंधकारका नाश करके सम्यग्ज्ञानरूपी सुप्रभात प्रगट करके सादिअनंत काल पर्यंत शाश्वत सुख-शांतिकी प्रगटता हो, ऐसी भावना के साथ स्वानुभूतिप्रकाश के सर्व पाठकवर्ग को नुतन सुप्रभातकी शुभकामना।

- स्वानुभूतिप्रकाश परिवार

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४५ः अंक-२५२, वर्ष-२३, नवम्बर-२०१८

आषाढ़ शुक्ल ११, मंगलवार, दि. २८-६-१९६६, योगसार पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-५७, प्रवचन-२०

यह योगसार शास्त्र है, ५७वीं गाथा। ५६ गाथा हो गयी-(गाथा) ५६ में ऐसा कहा कि यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है। इस ज्ञान को ज्ञान से प्रत्यक्ष न जाने, तब तक उसे आत्माका कुछ कार्य नहीं होता, क्योंकि जाननेवाला प्रत्यक्ष ज्ञानस्वरूप, चैतन्यप्रकाशस्वरूप है। वह चैतन्य, चैतन्य को जाने तो उसे प्रत्यक्षपना होता है तो उसे मुक्ति होती है और प्रत्यक्ष जानकर वेदन में-अनुभव में विशेष ले तो कर्म-बन्धन से छूटता है। उस ज्ञान पर यहाँ दृष्टान्त दिया जाता है। चैतन्य ज्ञान का प्रकाश-ऐसा उसका स्वरूप है, उसका प्रत्यक्षपना होना-यह उसका स्वभाव है और यही उसे अनुभव करके मुक्ति देनेवाला है। इसमें दृष्टान्त दिये हैं।

'**आत्मा के ज्ञान के लिए नौ दृष्टान्त हैं।**'

रयण दीउ दिणयर देहिउ दुद्धु धीव पाहाणु।
सुण्णउ रूउ फलिहउ अगिणि णव दिट्ठंता जाणु।।५७।।

नौ दृष्टान्त दिये हैं। साधारण समझाया जाता है। आत्मा, रत्न-समान है। आत्मा, जैसे रत्न प्रकाशमय है, वैसे आत्मा ज्ञान प्रकाशमय है। जैसे रत्न नित्य और कायम रहनेवाला है, वैसे आत्मा ज्ञानस्वरूप से अविनाशी कायम रहनेवाला है। जैसे रत्न मूल्यवान चीज है, वैसे आत्मा भी अलौकिक अचिन्त्य सम्यग्ज्ञान से ख्याल में आवे-ऐसी क़ीमती चीज है। समझ में आया?

आत्मा, रत्न के समान एक अमूल्य द्रव्य है। जगत में आत्मा एक अमूल्य द्रव्य है। '**परम धन...**' आत्मज्ञान रत्न के स्वामी सम्यग्दृष्टि झवेरी हैं। जैसे, झवेरी को रत्न की परीक्षा होती है, वैसे ही भगवान आत्मा चैतन्य निर्मलरत्न है, उसकी क़ीमत (परीक्षा) सम्यग्दृष्टिरूपी झवेरी को होती है। समझ में आया? कैसा भी रत्न हो परन्तु उसकी क़ीमत करनेवाला न हो तो उसकी क़ीमत इसके ख्याल में नहीं आती; वैसे (ही) भगवान आत्मा रत्न-समान शाश्वत है। रत्न बहुत थोड़े मिलते हैं, बहुत टिकते हैं, प्रकाशमय है; इस कारण उनकी क़ीमत की जाती है। इसी तरह भगवान ज्ञानरत्न किसी को स्वभाव में प्राप्त हो, नित्य टिकाऊ है और उसकी क़ीमत अनन्त आनन्द दै-ऐसी उसकी क़ीमत है; इसलिए उसे रत्न की उपमा (दी है)। यहाँ ज्ञानस्वरूप भगवान को रत्न की उपमा (दी) है। समझ में आया?

झवेरी, सम्यक्त्वी झवेरी उसे परखता है। इन राग-द्वेष, शरीर की क्रिया के द्वारा उसकी परीक्षा नहीं हो सकती। उसकी परीक्षा तो सम्यग्ज्ञान की प्रतीति द्वारा हो सकती है। ऐसा वह चैतन्य रत्न, रत्न की उपमा से उसका दृष्टान्त दिया है।

तथा, तीन रत्न कहे है न? उन्हें प्राप्त करते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तीन रत्न कहलाते हैं। पर्याय, तो कहते हैं। '**सदा आत्मा ज्ञानज्योति से प्रकाशवान है, अविनाशी है, स्वयं सम्यग्दर्शन रत्नमय, सम्यग्ज्ञान रत्नमय और सम्यक्चारित्र**

रत्नमय...' स्वरूप ही ऐसा है-ऐसा कहते हैं। उसका स्थायी स्वरूप ही सम्यग्दर्शन रत्नस्वरूप है, सम्यग्ज्ञान रत्नस्वरूप है, सम्यक्चारित्र रत्नस्वरूप है। वस्तु, हाँ! वस्तु। समझ में आया? भगवान आत्मा सम्यग्दर्शनरत्न जो पर्याय में है-ऐसा ही यह सम्यग्दर्शनरत्न त्रिकाळ उसके स्वभाव में है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसमें सम्यग्दर्शनरत्न, सम्यग्ज्ञानरत्न और सम्यक्चारित्ररत्न इस ज्ञानस्वभाव में पड़े हैं और तीन रत्न द्वारा उसकी परीक्षा हो सकती है। समझ में आया?

मुमुक्षु :- स्वभाव में पड़े हैं फिर भी किसी-किसी को ही मिले ऐसे हैं।

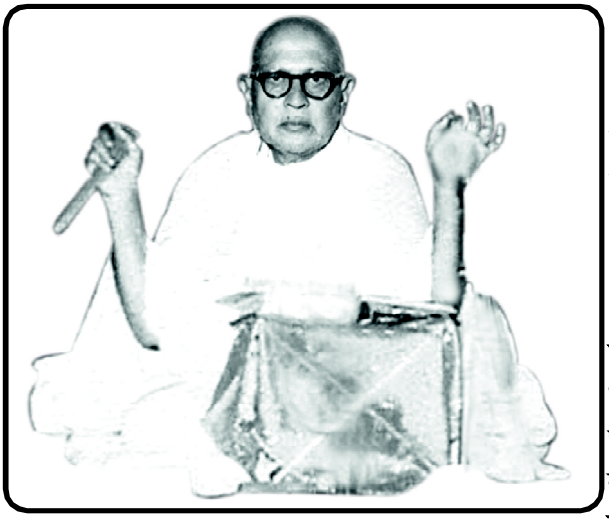

उत्तर :- जो साधन करे उसे मिले, ऐसा है। इसलिए किसी-किसी को कहा न! वैसे तो अनन्त आत्माएँ पड़े हैं, अनन्तगुने हैं। पानेवाले को, समझनेवाले को उसकी कीमत करनेवाले को मिलता है। क़ीमत दे उसे मिलता है, कीमत दिये बिना मिलता होगा? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की क़ीमत भरे तो उसे रत्न मिलें और उन रत्नों द्वारा मुक्ति की, -पूर्ण की प्राप्ति होती है। कहो! ऐसा रत्न भी इसे अनन्त काल से परकना नहीं आया।

परखे माणिक-मोती परखे हेम-कपूर;
एक न परखा आत्मा वहाँ रहा दिग्मूढ़।

मूढ़... समझ में आया? सब की परीक्षा की-उसका यह और उसका यह और उसका यह... आत्मा क्या चीज है? उसकी परीक्षा नहीं की। सब लौकिक की बड़ी-बड़ी बातें की, यह... यह... यह... यह... रोकेट ऐसे जाता है और अमुक ऐसे जाता है।

मुमुक्षु :- कितनों को आधीन करता है?

उत्तर :- धूल में भी किसी को आधीन नहीं करता है। समझता नहीं। चैतन्यरत्न जानने का काम करे या उसे जानते हुए राग करे। करे क्या दूसरा यह? ज्ञानस्वरूप हूँ-ऐसा भान करे तो जानने का काम करे। ज्ञानस्वरूप है-ऐसा भान न हो तो सामने देखकर राग से देखे तो यह मेरा और मैंने किया-ऐसा माने। दूसरा क्या करे?

मुमुक्षु :- इसके कारण तो सब मशीनें चलती हैं।

उत्तर :- धूल में भी नहीं चलती। इसके कारण चलती है? बिजली को आधीन की ऐसा कहता है। आकाश में से बिजली को आधीन की... गप्प ही गप्प मारता है, मूढ़!

रत्न समान भगवान आत्मा की क़ीमत, सम्यग्ज्ञानी रत्न की क़ीमत करता है, कहते हैं। जिसकी नजर में क़ीमत है, वह नजर से उसे परखता है। आहाहा..!

'**दीपक समान है। आत्मा दीपक समान स्वपर प्रकाशवान है।**' भगवान आत्मा दीपक है। चैतन्य-दीपक-चैतन्य प्रदीप। समझ में आया? '**दीपक के समान स्व-पर प्रकाशवान है। एक ही काल में यह आत्मा अपने को भी जानता है और सर्व द्रव्यों को, उनके गुण-पर्यायों को भी जानता है।**' ऐसा प्रकाशवान चैतन्यसूर्य है-ऐसा कहते हैं। दीपक के समान... स्वयं को जाने, समस्त अनन्त द्रव्य-गुण-पर्याय को और पर के अनन्त द्रव्य-गुण-पर्याय को भिन्न रहकर जाने, इसका नाम प्रकाश (है)। दीपक पर को जानते हुए पररूप नहीं होता-ऐसा दीपक-मान आत्मा स्व-पर प्रकाश का अस्तित्व तत्त्व है। कहो, समझ में आया? वास्तव में आत्मा दीपक के समान, पुण्य-पाप के राग, शरीर, वाणी, सबको प्रकाशित करनेवाला तत्त्व है। समझ में आया? रागादि और पर को उत्पन्न करनेवाला तत्त्व नहीं है। स्व-

पर को प्रकाशित करे-ऐसा वह तत्त्व है। इसलिए उसे दीपक की उपमा दी है। समझ में आया?

'**जानता है, तथापि परज्ञेयों से भिन्न है।**' देखो इसमें लिखा है। जाने, दीपक पर को जाने, दिखलावे परन्तु कहीं पररूप होता है? वैसे ही आत्मा पर को जाने, जानने से कहीं पररूप होता है? शरीर को जाने, राग को जाने, कर्म को जाने, पुद्गल को जाने... जानते हुए दीपक के समान, जैसे दीपक पर को प्रकाशित करे तो दीपक अपने में रहकर पर को प्रकाशित करता है; पररूप नहीं होता। इसी प्रकार चैतन्यदीपक देह में भगवान आत्मा स्वयं को और पर को प्रकाशित करते हुए पररूप हुए बिना प्रकाशित करता है-ऐसा उसका स्वरूप है। कहो, समझ में आया?

'**यह आत्मा कभी न बुझे ऐसा अनुपम दीपक है।**' अन्य दीपक तो बुझ जाता है-ऐसा कहते हैं। दीपक तो बुझ जाता है, यह तो बुझता नहीं। शाश्वत रत्न, शाश्वत दीपक, अनादि-अनन्त है, इसका बुझना क्या? शाश्वत चीज का नाश क्या? '**इस आत्मा दीपक को किसी तेल की आवश्यकता नहीं है।**' उस दीपक को तो तेल की आवश्यकता (पड़ती है) बत्ती की आवश्यकता (पड़ती है) (जबकि) यह तो तेल और बत्ती के बिना जलहल ज्योति भगवान प्रज्वलित है अन्दर। आहाहा..! चैतन्य दीपक, जिसे तेल-बत्ती, मन, राग की पुष्टि की आवश्यकता नहीं है-ऐसा कहते हैं। जैसे (रत्न) दीपक को तेल-बत्ती की जरूरत नहीं है, वैसे ही चैतन्य दीपक को मन की और राग की अपेक्षा की जरूरत नहीं है। ऐसा यह चैतन्य दीपक स्वयं से प्रकाशित हो ऐसा है।

यह आत्मा किसी पवन से बुझे ऐसा नहीं है। जैसे वह दीपक है, वह पवन से बुझ जाता है। इस राग और शरीर से आत्मा का नाश हो-ऐसा यह नहीं है। अविनाशी वस्तु दीपक के समान ऐसी की ऐसी जलहल ज्योति अनादि-अनन्त देह-देवल में भिन्न विराजमान है। '**सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों को एकसाथ झलकानेवाला है।**' समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को एक समय में प्रकाशित करे-ऐसा यह तत्त्व दीपक के समान है।

सूर्य का दृष्टान्त-'**आत्मा के सूर्य के समान प्रकाशमान और प्रतापवान है।**' कहो, समझ में आया? आत्मा प्रकाशवान्, प्रतापवान है। स्वयं से, प्रताप से शोभता है, अपने प्रकाश से शोभता है। प्रभुता के लक्षण से भरपूर है न तत्त्व? प्रभुता के लक्षण से स्वतन्त्र... अपने अखण्ड प्रताप से शोभित हो ऐसा यह तत्त्व अनादि है। समझ में आया? '**सर्व लोकालोक का ज्ञाता-दृष्टा है।**' जैसे सूर्य को सबको बतलाता है (प्रकाशित करता है) तो वह कहीं सबको नहीं बता सकता। यह तो (चैतन्यसूर्य तो) लोकालोक को जाननेवाला है। '**परम वीर्यवान् है।**' प्रतापवन्त कहा न? जैसे सूर्य का प्रकाश है, वैसे आत्मा में अनन्त वीर्य है। प्रकाश के साथ अनन्त वीर्य का सूर्य भगवान है। अनन्त बल का सूर्य भगवान आत्मा है। आहाहा..! समझ में आया?

'**परम शान्त है...**' वह सूर्य तो आतापवाला है। यह शान्त, अकषाय, वीतरागस्वभाव से भरपूर सत्त्व तत्त्व है। '**यह एक अनुपम सूर्य है।**' वह सूर्य तो साधारण है, ऐसे तो असंख्य सूर्य हैं। यह तो एक ही सूर्य अपना है, अपना हाँ! दूसरे का सबका अलग-अलग। अनुपम सूर्य! वह सूर्य तो शाम को ढँक जाता है; यह किसी दिन नहीं ढँकता। चैतन्यसूर्य प्रकाश का बिम्ब है, वह कब ढँकेगा? द्रव्यस्वभाव कब ढँकेगा? वस्तुस्वभाव कब आच्छादित होगा? ऐसा भगवान (आत्मा) सूर्यसमान चैतन्यबिम्ब, देह में विराजमान है।

'**कोई मेघ या राहु उसे ग्रस नहीं सकता।**' बादल अथवा राहु, सूर्य को पकड़े यह ऐसा सूर्य नहीं है। कर्म से कुछ पकड़ा जाये ऐसा नहीं है। राग के विकल्प से पूरा आत्मा ग्रसित हो जाये-ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया? चैतन्यसूर्य भगवान पर से ग्रसित हो ऐसा नहीं है। '**स्वयं परमानन्दमय है। जो इस आत्मसूर्य का दर्शन करता है, उसे भी यह आनन्द देता है।**' जो इसे देखे उसे आनन्द दे-ऐसा है। यह कहते हैं। जो इसे देखे,

उसे आनन्द दे। कहो समझ में आया? आया था न? '**नमः समयसारायः**' कलश टीका, नहीं? ज्ञान और आनन्द का दाता है। स्वयं शुद्धात्मा ज्ञान और आनन्द का दातार है। अशुद्ध आत्मा और पुद्गल वे कोई ज्ञानदाता इसमें नहीं है। पर का ज्ञान, उसमें ज्ञान नहीं है। पर में सुख नहीं है-पहले (कलश में) आया है। ज्ञान और आनन्द का वह दाता है, उसे जाननेवाले को आनन्द दे, उसे जाननेवाले को आनन्द दे। समझ में आया?

'**वह सदा निरावरण है।**' उसे कभी आवरण नहीं है। '**एक नियमित स्वक्षेत्र में...**' रहनेवाला है। यह सूर्य तो ऐसे से ऐसा उल्टा-सुल्टा घूमता है-ऐसा कहते हैं। सबेरे उगे, ऐसा फिरे... यह तो नियमित असंख्य प्रदेश में विराजमान है। सदा अपना क्षेत्र इतना रहे, यह शरीर का क्षेत्र तो बदलता है। नियमित अनादि-अनन्त असंख्य प्रदेश में विराजमान है, इसका क्षेत्र कभी नहीं बदलता। देह में रहने पर भी, देह के आकाररूप होने पर भी स्वयं अपना आकार नहीं छोड़ता, अपने आकार में रहता है।

अब, दूध-दही की उपमा (दी) है। पाठ में पहले दही-दूध और घी ऐसा रखा है। यह तीन होकर दृष्टान्त एक है, हाँ! तीन दृष्टान्त नहीं; तीन होकर एक है। दूध-दही और घी। '**आत्मा के दूध जैसे शुद्धस्वभाव का मनन करने से आत्मा की भावना दृढ़ होती है।**' जैसे दूध में से दही होता है न? ऐसे भगवान दूध के समान है, उसका एकाग्र ध्यान करने से उसे दही की मिठास प्रगट होती है और उसमें से जमकर घी होता है। कहो समझ में आया?

मुमुक्षु :- दृष्टान्त में से निकले तो अच्छा...

उत्तर :- दृष्टान्त में से क्या निकले? भाई! यह तुम्हारे भाई का लड़का है, हाँ! ऐसे दृष्टान्त में से वह हाथ आ जाए... दृष्टान्त तो उसके लिए है। दृष्टान्त, दृष्टान्त के लिए नहीं है।

भगवान... जैसे दूध को मथने से अथवा जमाने से जैसे दही होता है, वैसे भगवान आत्मा की एकाग्रता होने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का दही प्रगट होता है। उसमें विशेष एकाग्रता से उसमें से इसे घी-मोक्ष की दशा प्रगट होता है। दूध, दही और घी-तीनों की उपमा आत्मा को है। कहो, समझ में आया इसमें? '**आत्मा की जागृति ही दहीरूप होना है।**' ऐसा कहते हैं। देखो! जागृति।

'**तत्पश्चात् जैसे दही को बिलोने से घी सहित मक्खन निकलता है, उसी प्रकार आत्मा की भावना करते-करते आत्मानुभव होता है, जो परमानन्द देकर आत्मा को घी-समान बतलाता है।**' अथवा केवलज्ञान हो जाता है, मूल तो ऐसा है। समझ में आया? कितना निकल जाए तो भी केवलज्ञान (कम नहीं होता)। दूध के समान उसका एकाग्र ध्यान करने से दही के समान मिठास (होती है) और विशेष एकाग्रता करने से दही में से घी निकलता है-ऐसा केवलज्ञान हो जाता है। कहो, यह दृष्टान्त अन्दर समझने के लिए है। दृष्टान्त में से आत्मा निकले ऐसा है? यह भी रचना अद्भुत है! कल्पना सही न!

'**स्वयं ही दूध है, स्वयं ही दही है, स्वयं ही घी है। मुमुक्षु को निज आत्मारूपी गोरस का ही निरन्तर पान करना चाहिए।**' लो! यह दूध, दही और घी भगवान आत्मा है। आहाहा..! शुद्ध चैतन्य का सत्त्व, वह पूरा दूध समान, उसे प्राप्त करने से अर्थात् उसका मेल-एकाग्र करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का दही निकलता है और उसमें (विशेष) एकाग्र होने से केवलज्ञान का मक्खन अथवा घी निकलता है-ऐसा यह आत्मा दूध, दही और घी जैसा है। लो! यह तो सरल दृष्टान्त है। दूध, दही और घी में से आत्मा निकले ऐसा है? दूध, दही और घी तो उसकी उपमा है, वह तो आत्मा की उपमा है।

अब पाँचवाँ दृष्टान्त... यह तीन होकर एक है, हाँ! समझ में आया? रत्न का, दीपक का, सूर्य का, और यह तीन होकर एक-ऐसे चार हुए। अब, इसमें पाषाण का है। उसमें पीपर का है, अपने अन्त में दिया है न? मूल पाठ में पाषाण है और मैं जो यह बारम्बार देता हूँ, उस पीपर का दृष्टान्त...

पीपर! वह इसमें है। आत्मा पीपर के समान है। पीपर में जैसे चौंसठ पहरी चरपराहट भरी है न? पीपर का दाना होता है न? चौंसठ पहरी समझते हो? छोटी पीपर में चौंसठ पहरी तिखास/चरपराहट भरी है, वैसे ही आत्मा में पूरा केवलज्ञान, केवलदर्शन और आनन्द पड़ा है। कहो, समझ में आया? और उसे ही आत्मा कहते हैं। जैसे चौंसठ पहरी चरपराहट को ही पीपर कहते हैं। वैसे यह आत्मा अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, अनन्त-आनन्द को ही यहाँ आत्मा कहा गया है। उसमें एकाग्र होने पर... जैसे पीपर में से शक्ति प्रगट होती है, वैसे आत्मा में से शक्ति-केवलज्ञान, केवलदर्शन और मोक्ष की दशा प्रगट होती है। उस पीपर के समान भगवान आत्मा की उपमा दी जाती है। आहाहा..! समझ में आया?

यहाँ पत्थर की उपमा दी है, मूल शब्द पत्थर है। '**आत्मा पत्थर के समान दृढ़ और अमिट है।**' जैसे मजबूत पत्थर दृढ़ होता है और एक कणी भी नहीं खिरती। संगमरमर का बहुत चिकना पत्थर होता है, बहुत चिकना, उससे भी चिकने पत्थर की जाति होती है। संकमरमर से भी बहुत चिकना, हाँ! बहुत चिकना... एक कणी भी नहीं खिरे। कणी खिरे नहीं ऐसा चिकना... चिकना... चिकना... चिकना... रजकण का स्कन्ध ऐसा चिकना, परिणमित होता है न? कि उसमें से एक कणी नहीं खिरती; वैसे ही भगवान आत्मा, उसके असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण का पिण्ड, उसमें प्रदेश और गुण, एक अंश भी नहीं खिरता, नहीं घटता-ऐसा वह चिकना अनन्त गुण का पिण्ड भगवान है।

'**दृढ़ और अमिट है, अपने अन्दर अनन्त गुण रखता है।**' जैसे पत्थर में बहुत दृढ़ता की शक्तियाँ रहती हैं, वैसे आत्मा में अनन्तज्ञान-दर्शन आदि शक्तियाँ रहती हैं। '**उन्हें कभी कम होने नहीं देता...**' वह पत्थर उत्कृष्ट होता है और वह बहुत चिकना (होता है)। ऐसा का ऐसा सदा रहता है। उत्कृष्ट स्फटिक मणि है, देखो न यह लो! चन्द-सूर्य... चन्द्र-सूर्य के पत्थर... कभी एक कणी नहीं खिरती, कणी कम नहीं होती। अनादि-अनन्त ऐसा का ऐसा (रहता है)। चन्द्र-सूर्य का स्फटिक है न।

मुमुक्षु :- वहाँ तो बँगले बनानेवाले हैं।

उत्तर :- बँगले बनायेंगे। वह तो एक व्यक्ति ने इंकार किया है कि अब नहीं जा सकते-ऐसा आया है, सुना है? यह सब गप्प, होने दो तो सही, वहाँ जाने के बाद आवे तो सही, अभी मरकर... मुफ्त में गप्प ही गप्प... आकाश और पाताल एक करना चाहते हैं। निगोद और सिद्ध मानो एक करते हों। भिन्न पदार्थ हैं। समझ में आया? आहाहा..! सर्वज्ञ द्वारा कथित तत्त्व तीन काल में बदले ऐसा नहीं है। लोगों को शंका और सन्देह (रहता है)। वास्तविक परमात्मा ने क्या कहा है? उसका पता नहीं है।

'**न कभी अन्य गुण को स्थान देता है।**' पत्थर कहीं दूसरे को स्थान नहीं देता, वैसे ही आत्मा असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का कठिन पिण्ड, वह दूसरे को स्थान नहीं देता। इस विकल्प को भी वह स्थान नहीं देता-ऐसा आत्मा पत्थर के समान चिकना है। आहाहा..! क्या कहलाता है? चिरोली निकलती है और बहुत ऊँची? क्या कहलाती है? तुम्हारे लड़के को प्रकाश... लो, वह प्रकाश और यह चिरोली... चिलोही बहुत ऊँची। ऐसी मक्खन जैसी, नीचे ऐसी सफेद... सफेद... सफेद... नीचे जैसे जाते जाएँ न... आटा बनाकर सेना के व्यक्तियों को रोटियाँ खिलावे (तो) हड्डियाँ मजबूत हों। यह तो चिकना पत्थर... ऐसा आत्मा अनादि का है, उसमें से कुछ खिरे ऐसा नहीं है। अनन्त गुण का पिण्ड, अनन्त गुण का पिण्ड-पत्थर किसी को स्थान दे-ऐसा नहीं। राग और कर्म और शरीर को स्थान दे-ऐसा आत्मा नहीं है। कहो, समझ में आया?

'**अगुरुलघु सामान्य गुण द्वारा यह अपनी मर्यादा में टिक रहा है।**' पत्थर की उपमा दी है न! '**आठ कर्मों के संयोग से संसार-पर्याय में रहता है तो भी कभी अपना स्वभाव छोड़कर आत्मा में से अनात्मा नहीं हो जाता। निश्चल परम दृढ़ सदा रहता है।**' विकार के पर्यायरूप भी वस्तु स्वयं-द्रव्य ज्ञायकभाव वह कभी नहीं हुआ-

ऐसा दृढ़ है कि पानी की बिन्दु जैसे पत्थर में प्रविष्ट नहीं होती, मजबूत पत्थर में पानी प्रवेश नहीं पाता, मगसेलिया पत्थर ऐसे बारीक होते हैं। मगसेलिया, अगसेलिया समझते हो, मूँग के दाने जैसा। वहाँ रेत में बहुत होते हैं, हमने तो बहुत देखे हैं न! रेत के अन्दर ऐसा बारीक, चिकना... पानी छुए ही नहीं उसे। पानी रहे तो कैसा? परन्तु छुए ही नहीं। पड़ा साथ में ऐसा... बहुत चिकनाहट, मूँग के दाने जैसा। मगसेलिया पत्थर होता है, मगसेलिया। ऐसा यह पत्थर ऐसा है। रेत में बहुत होता है। राणपुर में बहु दिखता है, वहाँ स्मशान है न? वहाँ जंगल जाते हैं न? वह क्या कहलाता है? पौहटी... वहाँ बहुत देखने को मिलते हैं, बहुत दिखते हैं। आगे-आगे जाते हों कोई मनुष्य नहीं दिखता... बारीक... बारीक मूँग के दाने जितने होते हैं, रेत में कोई-कोई जगह, हाँ! ऐसा चिकना... ऐसा चिकना, हाँ! इसलिए उसे मगसेलियो पत्थर कहते हैं। देखा है कभी? ख्याल नहीं?

इसी प्रकार यह भगवान मगसेलिया पत्थर जैसा है। राग को छूने नहीं दे, राग का पानी अन्दर प्रविष्ट न हो। समज में आया? कहो, भाई! देखा है या नहीं मगसेलिया पत्थर? कोरा लगे, निकला तो ऐसा का ऐसा। मगसेलिया अर्थात् उस स्वभाववाला, ऐसा। ऐसा स्वभाव, बहुत चिकना स्वभाव। कहो, समझ में आया?

स्वर्ण की उपमा-'**आत्मा शुद्ध स्वर्ण समान परम प्रकाशवान ज्ञानधातु से निर्मित...**' लो! वह सोना धातु है, स्वर्ण धातु। यह आत्मा ज्ञानधातु, उस स्वर्ण समान अनादि विराजमान है। '**अमूर्तिक एक अद्भुत मूर्ति है।**' सोने को ऐसे देखो तो सोने की मूर्तियाँ आहाहा..! लोग देखने निकलें, हाँ! समान मूर्ति हो, सोने की और पाँच सेर की मूर्ति हो, कारीगरी (हो)... आहाहा..! यह आत्मा असंख्य प्रदेशी अकेली स्वर्णमयी मूर्ति है। समझ में आया? चैतन्यधातु है।

'**संसारी आत्मा खान में निकला हुआ धातु, पाषाण, स्वर्ण की तरह अनादि से कर्मरूपी कालिमा से मलिन है।**' पर्याय में, हाँ! '**अग्नि आदि के प्रयोग से जैसे सोने की धातु, पाषाण से अलग करके शुद्ध कुन्दन की जाती है...**' सोने को जैसे अग्नि का निमित्त मिलने से अपने उपादान से जैसे सोना शुद्ध हो जाता है; इसी प्रकार '**आत्माध्यानरूपी अग्नि द्वारा...**' भगवान आत्मा अपने स्वरूप की एकाग्रतारूपी ध्यान की अग्नि से यह भगवान आत्मा, स्वर्ण की तरह सोलहवान... सौ प्रतिशत सोना... क्या कहलाता है? सौ कैरेट का, ऐसा आत्मा सौ प्रतिशत स्वर्ण स्वभाव से है, स्वभाव से है। सोलहवान ही स्वभाव से है। उसमें एकाग्र होवे तो पर्याय में सोलहवान (पूर्ण शुद्ध) हो जाता है-ऐसा स्वर्ण समान है।

चाँदी-समान। चाँदी-समान परमशुद्ध और निर्मल, ऐसा। एक क्षेत्र में साथ रहा होने पर भी उसकी सफेदी-वीतरागता जाती नहीं है। वीतरागतारूपी सफेद उसमें भरी है। कहो, यह तो सबके प्रिय चाँदी और स्वर्ण के दृष्टान्त हैं।

मुमुक्षु :- देखा हो तब ऐसा कहे कि अनुपम है, फिर उपमा तो देते हैं।

उत्तर :- उसे वास्तव में उपमा नहीं है। यह तो दृष्टान्त है, यह उपमा नहीं है। यह तो दृष्टान्त है कि इस प्रकार से यह जैसा है, ऐसी चीज ऐसी अलौकिक है, ऐसा। समझ में आया? ठीक कहते हैं यह, बीच में लकड़ा (विपरीतता) डालते हैं, हाँ!

मुमुक्षु :- वहाँ नौ दृष्टान्त...

उत्तर :- नौ क्या अनन्त दृष्टान्त हैं। जितने जगत् में उत्तम-उत्तम दृष्टान्त होते हैं, वे सब आत्मा को लागू पड़ते हैं। दृष्टान्तों का क्या? कहो, समझ में आया?

जैसे चाँदी अपनी सफेदाई को कभी नहीं छोड़ती; उसी प्रकार भगवान आत्मा अपनी निर्मलता की सफेदी, वीतरागता की सफेदी, निर्दोष आनन्द की सफेदी कभी नहीं छोड़ता। आहाहा..! '**ज्ञानी आत्मारूपी चाँदी का सदा व्यवहार करता है...**' लो! वह चाँदी का व्यापार करते हैं न? चाँदी के व्यापारी नहीं कहते? वह चाँदी का व्यापारी है। यहाँ कहते हैं, ज्ञानी

आत्मारूपी चाँदी का सदा व्यापार करता है। यह वीतरागता की सफेदाई को प्रगट करता है। आहाहा..! चाँदी का व्यापारी है, नहीं कहते? यह सोने का व्यापारी है, यह रत्न का व्यापारी है। झवेरी कहते हैं न? अपने वे आते हैं, वे चाँदी के व्यापारी हैं।

कहते हैं, चाँदी का व्यापार.. भगवान आत्मा तो सदा चाँदी का व्यापार, वीतरागता की सफेदाई से भरपूर तत्त्व, उस वीतरागता की सफेदी को प्रगट करने का ही ज्ञानी का व्यापार-धन्धा है। कहो, यह राग-वाग, पुण्य-पाप करना, यह उसका धन्धा नहीं है-ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा..! '**आत्मा के अन्दर ही रमणता करता है, वह कभी परमानन्दरूपी धन से शून्य नहीं होता।**' लो, चाँदी के साथ कहा। समझे न?

आठवाँ स्फटिकमणि का दृष्टान्त-'**स्फटिक मणि के समान निर्मल और परिणमनशील है।**' निर्मल और परिणमनशील इतनी, दो उपमा लेना, बाकी बहुत डाला है। '**जैसे स्फटिकमणि लाल, पीली, नीली वस्तु के सम्पर्क से लाल, पीले-नीले रंगरूप परिणमन करती है तो भी अपनी निर्मलता को खो नहीं बैठती...**' यह अवस्था में स्फटिक का लाल आदि रंग दिखता है, तथापि वह स्फटिकपने की स्वच्छता को नहीं छोड़ता। समझ में आया? इसी प्रकार आत्मा रागादि दशा को धारण करने पर भी वस्तुस्वरूप से स्फटिकमणि जैसा है, वह स्फटिकमणि कभी राग-रूप नहीं होती। ज्ञानी कदापि... यह आता है न? क्या कहा यह? स्फटिकमणि में कहा न? ज्ञानी, रागरूप परिणमति नहीं होता। ज्ञानी अर्थात् द्रव्य; ज्ञानी अर्थात् आत्मद्रव्य। वहाँ विवाद उठा न यह सब? देखो! दृष्टान्त देंगे। देखो!

'**जब फलियमणि विसुद्धो ण सयं परिणमदि रागमादीहिं**' देखो, है न? स्फटिकमणि (जैसे) विशुद्ध (है वैसे) रागादि (रूप से) स्वयं नहीं परिणमती। वस्तु स्फटिकमणि का रागरूप/रंग-रूप परिणमित होना स्वभाव ही नहीं है। वैसे ही वस्तु का रागरूप होना-ऐसा स्वभाव ही नहीं है। बन्ध अधिकार है न? बन्धरूप होना-ऐसा अबन्धस्वभावी आत्मा का स्वभाव ही नहीं है, समझ में आया? ऐसा कहते हैं। तब वे कहें, देखो! परद्रव्य के कारण बन्ध है... परन्तु इस स्वद्रव्यस्वरूपी अबन्धस्वरूप में बन्ध नहीं होता, इससे अबन्ध भगवान आत्मा, बन्धपने को परिणमित हो-ऐसा उसका स्वरूप ही नहीं है। वह जब परलक्ष्य करके ममता करता है, तब पर्याय में बन्धभाव से परिणमता है। वह तो परद्रव्य से लक्ष्य से परिणमता है। स्वद्रव्य का स्वभाव बन्धरूप परिणमना-ऐसा है नहीं। समझ में आया? यह बड़ी विवाद की गाथा है। आहाहा..!

यह कहते हैं देखो! द्रव्य का स्वभाव राग (रूप) होने का नहीं है, यह लिखा, देखो! '**राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रत्तादियेहिं दव्वेहिं।**' देखो! '**एवं जाणि सुद्धो ण सयं परिणमदि रागमादीहिं।**' देखो! वह द्रव्य स्वयं रागरूप परिणमित होने का उसका स्वरूप ही नहीं है। द्रव्य का स्वभाव होवे ऐसा? वह द्रव्य स्वयं जब पर का लक्ष्य करे, तब पर्याय में पर की ममता आदि (भाव से) पर्याय में रागरूप होता है। वस्तु स्वयं कब होती थी? समझ में आया? इस गाथा का विवाद ठेठ से चलता है, ए... वहाँ से-ईसरी से। विकार होता है, वह निरपेक्ष अपनी पर्याय से होता है। बस, पकड़े गये वे लोग, पकड़े गये।

भगवान आत्मा बन्धस्वभावी है ही नहीं। वह तो स्फटिकमणि जैसा है। देखा? स्फटिक मणि जैसे स्वयं लाल आदि (रूप) परिणमे, वह स्वयं परिणमता है। वह तो पर्याय में निमित्त के संग से एक समय की दशा (है), बन्धस्वभावी भगवान न होने पर भी पर्याय में-एस अंश में बन्धपना हुआ, वह अबन्धद्रव्य का स्वभाव नहीं है। आहाहा..! समझ में आया? वह तो पर्यायदृष्टि का परिणमन है, वह द्रव्यदृष्टि में द्रव्य का परिणमन है ही कहाँ? द्रव्यस्वभाव वैसा है ही कहाँ? ऐसा बतलाना है। ओहो..! ऐसा सीधा सत्... सत् स्वतः सहज सरल, सतत् सुलभ है।

भगवान आत्मा अकेला स्फटिक जैसा, तीन काल-तीन लोक, काल और क्षेत्र में अपना भाव छोड़कर विकाररूप होवे-ऐसा उसका स्वरूप है ही

नहीं। समझ में आया? भाव अर्थात् गुण, शक्ति। वह फिर इन्होंने लिखा है... ऐसा कुछ नहीं। (जयसेनाचार्य की गाथा का दृष्टान्त दिया है। ३०० से ३०१) २७८ में (अमृतचन्द्राचार्य की टीका में) है। उस स्फटिकमणि में से (उस दृष्टान्त से) आत्मा निकलता है। आहाहा..! देह में चैतन्य स्फटिकमणिरत्न है। अनादि-अनन्त चैतन्यरत्न स्फटिकमणि है-ऐसी दृष्टि करने से उसे सम्यक् रत्न प्रगट होता है। वह रत्न स्फटिक रत्न है, उसकी दृष्टि करने से सम्यक् रत्न प्रगट होता है। राग की-पुण्य की दृष्टि करने से सम्यक्रत्न होगा? वे (कहाँ) रत्न हैं? रत्न तो यह है। आहाहा..! समझ में आया?

नौवाँ अग्नि का दृष्टान्त... '**यह आत्मा अग्नि के समान सदा जलता रहता है।**' सदा ज्वाजल्यमान ज्योति है। जैसे अग्नि में प्रकाश, दाहक और पाचक गुण है, वैसे ही आत्मा में भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र त्रिकाली गुण हैं। समझ में आया? अग्नि, प्रकाशक है; अनाज को पचाती है; ईंधन को जलाती है। दाहक-जलाती है; ऐसे ही भगवान अग्नि के समान है, जिसका त्रिकाल स्वभाव चैतन्य का, स्व-पर का प्रकाशित करने का है, पाचक का है, पूर्ण तत्त्व पचा सके-ऐसी ताकत उसमें त्रिकाल पड़ी है, पूर्णानन्द का नाथ मैं परमेश्वर पूरा एक समय में हूँ-ऐसी पचाने की शक्ति उसमें त्रिकाल पड़ी है और उसमें चारित्र नाम का त्रिकाल गुण है कि जो अज्ञान और राग-द्वेष को जलाकर राख करता है-ऐसा उसमें त्रिकाल गुण है। कहो, समझ में आया इसमें? कहो, यह तो दृष्टान्त में से तो समझ में आवे ऐसा है या नहीं? दृष्टान्त में से मिले-ऐसा नहीं भले। हैं? दृष्टान्त में से मिले? दृष्टान्त में से समझ में आये ऐसा है, मैंने ऐसा कहा। कहो, समझ में आया?

अग्नि '**किसी भी विषय या पर का आक्रमण होने नहीं देती।**' अग्नि (के ऊपर) आक्रमण होता है? सूक्ष्म जीव आकर उसे दबा दें? समझ में आया? जलहल ज्योति... जलहल ज्योति, चैतन्यप्रकाशमय, पाचकमय और दाहकस्वभावमय, उसे कोई आक्रमण करके ढाँक दे-ऐसा वह तत्त्व नहीं है। '**जब वह संसार-पर्याय में होता है, तब वह स्वयं ही अपने आत्मिक ध्यान की अग्नि जलाकर अपने कर्ममल को भस्म करके शुद्ध हो जाता है।**' लो, ऐसी अनुपम अग्नि, कर्म ईंधन की दाहक। लो! यहाँ कर्म ईंधन की दाहक (कहा)। जला देती है। '**आत्मिक बल की पोषक है, और सदा ज्ञान द्वारा स्व-पर प्रकाशक है।**' ऐसा लिया। आत्मबल की पोषक है, यह बल का डाला। '**इन नौ दृष्टान्तों से आत्मा को समझकर...**' देखो! ऐसा लिया, दृष्टान्तों से समझकर... दृष्टान्तों में आत्मा नहीं है। '**समझकर पूर्ण विश्वास प्राप्त करना चाहिए।**' भगवान आत्मा को इन नौ दृष्टान्तों से पहचानकर अपने स्वभाव का पूर्ण विश्वास करना चाहिए। कहो, यह तो सरल बात है या नहीं? यह दृष्टान्त सरल... समझ में आया या नहीं? हैं?

मुमुक्षु :- दृष्टान्त भी आप समझाओ (तब समझ में आते हैं)।

उत्तर :- लो, समझाओ, तब समझ में आता हैं... यह ५७ गाथा (पूरी हुई)। यह तो दृष्टान्त थे इसलिए (लम्बी चली)। चालीस मिनिट हो गये।

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (नवम्बर-२०१८) का शुल्क एक मुमुक्षु, अमरिका के नाम से साभार प्राप्त हुआ है। जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार ग्रंथके २५९ वचनामृत पर भाववाही प्रवचन, दि.३१-५-१९८३, प्रवचन क्रमांक-११७ (विषय : भेदज्ञान)

किस रीतिसे भिन्न-भिन्न करते हैं?-कि स्व-पर-ग्राहक लक्षणयुक्त चैतन्यप्रकाश है; उस चैतन्यको जानकर और रागको जानकर भिन्न-भिन्न करते हैं। स्व-पर-ग्राहक ऐसा ज्ञान-प्रकाश स्वको जानता है और परको भी जानता है, लेकिन परको जानकर उसे भिन्न रखता है। चैतन्यलक्षण द्वारा स्वको लक्षित करते ही ध्रुवके पूर (प्रवाह) पर लक्ष्य जाता है। २५९.

२५९ वचनामृत भी उस-ही टीकामें-से है। २५८-५९-६० तीन।

'**किस रीतसे भिन्न-भिन्न करते हैं?**' अब इस विषयको २५९में ज्यादा खोलते हैं। दोनोंको प्रथम बुद्धिगम्य रीतसे ख्यालमें आये उस प्रकारसे भिन्न-भिन्न करता है, फिर कैसे करात है? प्रश्न खड़ा करके बातको ज्यादा स्पष्ट करते हैं। '**स्व-पर-ग्राहक लक्षणयुक्त चैतन्यप्रकाश है; उस चैतन्यको जानको जानकर और रागको जानकर भिन्न-भिन्न करते हैं।**' जो चैतन्यप्रकाश है, चैतन्यका वेदन है वह उसे अनुभवपूर्वक ज्ञात होता है, स्वपने वेदनमें आता है-स्वपने अनुभवमें आता है। साथ-साथ राग भी प्रतिबिंबित होता होनेसे चैतन्यमें चैतन्यदर्पणमें उसका प्रतिबिंब उठता होनेसे वह ज्ञात होता है। दोनों ज्ञात होते हैं, परन्तु दोनोंको अपने-अपने स्थानमें रखता है। सौ लड़कोंके समूहमें अपने पुत्रको भी जाने और दूसरे ९९को भी जाने। विकल्प नहीं करना पड़ता कि यह मेरा और दूसरे मेरे नहीं, ऐसा विकल्प नहीं करना पड़ता। ज्ञान जानता है। जानते ही स्व-परकी भिन्नताको जानता है। ऐसा निर्विकल्पपने जाननेका ज्ञानमें सामर्थ्य है।

तख्तेश्वरकी चोटी परसे एकसाथ भावनगरके हजारों घरको देखे। ऐसे नज़र करता है उसमें यह मेरा ऐसा देखता है। बिना विचार किये, देखते ही उसमें अपनत्व भासित होता है और दूसरोंको देखते ही अपनत्व भासित नहीं होता। ज्ञानमें सामर्थ्य है कि नहीं? वैसे ज्ञानमें जो ज्ञान स्व-रूप है, जो ज्ञान ज्ञान ही है, ज्ञान तो ज्ञान स्वयं ही है, उसमें उसे स्वपना करना पड़े ये तो कितना विचित्र है!

यहाँ उपदेश तो इतना ही है कि तू तेरेमें स्वपना कर। जहाँ तेरा नहीं है, उसमें तू स्वपना मत कर। इतना ही उपदेश है। अनादिकी भूल क्या हुई है? कि परमें स्वपनेकी बुद्धि है और स्वमें स्वपनेकी बुद्धि नहीं है। जो कुछ गड़बड़ है वह इतनेमें ही है। फिर तो उसका विभाव विशेषरूपसे फैलता है तब अनेकविधता धारण करता है। परन्तु उन सबमें सामान्य भूल तो इतनी ही है कि परमें स्वपनेकी बुद्धि है। स्व-परका जानना, यहाँ ग्रहण अर्थात् जानना। स्व-पर-ग्राहक अर्थात् स्व-परको जानना जिसका लक्षण है, स्व-पर ज्ञात हो ऐसा जिसका चिह्न है, ऐसा

जो चैतन्यका प्रकाश, वह चैतन्यकी विशिष्टता है। स्वको जानना, परको जानना एकसाथ युगपद्पने हो वह तो चैतन्यकी स्वयंकी स्वाभाविक विशिष्टता है। ऐसा जो चैतन्यप्रकाश है, '**उस चैतन्यको जानकर...**' प्रगट प्रकाश है उसे जानकर।

'**और रागको जानकर भिन्न-भिन्न करते हैं।**' सहजपने, हाँ! विकल्प नहीं करना पड़ता। ये राग भिन्न, ये ज्ञान भिन्न ऐसे नहीं। ज्ञान स्वपने वेदनमें आता है, उस ज्ञानमें नहीं हैं ऐसे तत्त्व राग और परपदार्थ जो ज्ञानमें नहीं हैं ऐसे तत्त्व हैं, वह उसमें अनुभवगोचर नहीं होते, क्योंकि उसमें है नहीं। जिसमें शक्कर नहीं डाली है ऐसा दूध मीठा कहाँ-से लगेगा? वह तो फ़ीक़ा ही लगेगा। जैसा दूध है वैसा ही उसका स्वाद लगता है। उसमें शक्कर डाली हो तो उसमें उसका स्वाद आये।

इसप्रकार चैतन्यमें कोई पदार्थ मिश्र नहीं हो सकते, कोई अवकाश नहीं है। आत्मा चैतन्यघन है। इसीलिये तो उसका घनिष्ट स्वभाव बताया है, घन कहकर। उस चैतन्यघनमें किसीका प्रवेश नहीं है। आनन्दघनमां दुःखका प्रवेश नहीं है। चैतन्यघनमें रागका प्रवेश नहीं है। ऐसा जो अतिनिविड़ स्वभाव है, परिपूर्ण निविड़ स्वभाव है उसमें परपदार्थका प्रवेश नहीं है, स्पर्शन नहीं है, स्पर्श सुद्धा नहीं है। वह ज्ञात तो होता है, लेकिन वह ज्ञात होता है उस वक्त वह भिन्न-भिन्न रहता है। स्व स्वपने ज्ञात होता है और पर ज्ञात होनेपर पर भिन्नपने रह जाता है। इसप्रकार दोनोंको जानकर भिन्न-भिन्न रखता है।

'**स्व-पर-ग्राहक ऐसा ज्ञान-प्रकाश स्वको जानता है और परको भी जानता है, लेकिन परको जानकर उसे भिन्न रखता है।**' परको जानकर वह परको भिन्न रखता है। पर परपने ज्ञात होता है तब परकी उपाधि ज्ञानमें आती नहीं। ज्ञानमें उपाधि कब होती है? ज्ञानमें कहो अथवा आत्मामें कहो। जब पर स्वपने ज्ञात होता है, ऐसी भूल होता है, तब उसे परिणाममें उपाधिभाव उत्पन्न होता है। अन्यथा उसे उपाधि नहीं रहती।

समस्त विश्वके समाचार रेड़ियोमें, अखबारमें आते हैं न? लेकिन उसकी उपाधि नहीं आती। इतना अकस्मात हुआ, इतने मर गये, फलाना हुआ, ढीकना हुआ, कितना आता है। कोई उपाधि क्यों नहीं होती है? उसमें स्वपना नहीं है इसलिये वहाँ उपाधि नहीं होती है। यह तो सीधा अनुभवका विषय है। वैसे जो ज्ञानमें नहीं है, आत्मामें नहीं है, स्वयंमें नहीं है उसकी उपाधि स्वयंको किस बातकी है? कि भ्रमणासे उपाधि है कि यह मेरा है। ऐसी भ्रमाण की है उसकी उपाधि है। यह शरीर तंदुरस्त रहे तो अच्छा और शरीरमें स्वास्थ्य बिगड़कर रोग न हो तो अच्छा है। रोगको कौन इच्छता है? कहते हैं कि शरीरकी उपाधि शरीरके ममत्वके कारण है।

जिसे जानना होता है, मात्र जानना होता है, उसे उसकी उपाधि क्या? उसे उसकी उपाधि सम्यक् प्रकारसे नहीं है। मानसिक बलवाले उसकी उपाधि नहीं करते हैं। आत्मिक-बलवाला न करे उसकमें कोई आश्चर्य नहीं है। जिसने मात्र मनोबल जागृत किया होता है वह भी शरीरके विकृत फेरफारमें उलझते नहीं है। ऐसा कहते हैं कि उसमें क्या हो गया? चाहे जो भी हो, हमें उसकी कोई असर हो ऐसा नहीं है। ऐसे दृढ़ मनोबल किया हो उसे कोई दिक्कत नहीं होती।

मुंबईमें एक मुलतानी मिले थे। प्लास्टीक फेक्टरीके मेनेजर थे। इतना मनोबलवाला मनुष्य था, मुझे कहा, मुझे अग्नि दीजिये, मैं हाथमें मुट्ठी बन्द करके पकड़के रखता हूँ। जलती हुई अग्नियुक्त कोयला हो उसे मुट्ठी पर रख दो, उसे हाथमें पकड़ लूँ। मुझे कोई असर नहीं होगी। मनोबलका कारण है। बचपनसे भगवानकी खोज करनेका बहुत विचार था। एकबार भाग गया। युवा वयमें घर छोड़कर भाग गया। मन्दिर गया, मस्जिद गया, सीखोंके गुरुद्वारमें गया, हिमालयमें भटका, काशी गया,.. मुलतानी हिन्दु होते हैं। मुलतानी लोग हिन्दु होते हैं। ये टोड़रमलजीके साथ पत्रव्यवहार करते थे न? दिगंबर जैन है मुलतानीमें। ये पाकिस्तानसे जयपुर आ गाये, तो कितने ही अपने दिगम्बर जैन हैं। मुलतानीओंने आदर्श नगरमें निर्माण किया है। बहुत अच्छा बनाया है। पूरा नया बनाया है उन लोगोंने।

हम वहाँ जाते हैं तब वहाँ वाँचन करते हैं। बहुत प्रेमी लोग हैं। (उन्होंने कहा), कहीं मिलता नहीं है। भगवानको कहीं देखा नहीं। खोजते-खोजते थक गया। मेरा मनोबल तो इतना है कि अभी अग्नि दो, मुट्ठमें पकड़ लूँ। शरीर परकी एक कल्पना करे कि मैं ऐसा कर सकता हूँ, वहाँ उसका मनोबल उतना काम करता है। आत्माकी शक्तिमें-से जो परिणमनमें बल आये, उसकी शक्ति कितनी? उसकी शक्ति उतनी कि पूरे विश्वमें ईधर-ऊधर हो जाय, वज्रपात हो तो भी उसे भय नहीं लगता। आता है? निर्जरा अधिकार, समयसार निर्जरा अधिकारमें सम्यग्दृष्टिको सप्त भय नहीं है। पूरा प्रकरण चला है। एक-एक भय पर एक-एक श्लोक लिखा है, अमृतचंद्राचार्यदेवने-टीकाकारने। गाथा भी है और श्लोक भी है।

कहते हैं, '**स्व-पर-ग्राहक ऐसा ज्ञान-प्रकाश...**' यहाँ तो जो लिया वह कृत्रिम स्थिति है, ऐसा कहते हैं। मनोबलवालेकी तो कृत्रिम स्थिति है। वह ज्यादा देर नहीं चलेगा। वह शक्ति कृत्रिम है, ज्यादा टिकनेवाली नहीं है। ये आत्माके स्वभावमें-से-शक्तिके खजानेमें-से-भण्डारमें-से शक्ति प्रगट होती है, वह सादिअनन्त टिकती है। कितना काल टिकती है? जबसे प्रारंभ हुआ तबसे लेकर अनन्त काल पर्यंत उसका टिकना होता है।

वह '**ज्ञानप्रकाश स्वको जानता है और परको भी जानता है,...**' दोनोंको जानने पर दोनों भिन्न-भिन्न ज्ञात होते हैं। जो भिन्न है, वह भिन्न ज्ञात होते हैं। ज्ञानको कोई जबरन काम नहीं करना है। जो भिन्न है उसे भिन्न जानना है। दो मिश्र हो गये हों और उसे भिन्न करना हो तो वह अलग बात है, परन्तु जो भिन्न है उसे भिन्न करना उसमें क्या विशेष करना है? उसमें तो कोई ऐसा विशेष कार्य नहीं है। जो भिन्न है उसे ज्ञान बराबर चौकसाईसे, सावधानीसे भिन्न तत्त्व है उसे भिन्न जानता है। अपनेमें वेदन नहीं होता है, अपनेमें अनुभव नहीं होता है, इसप्रकार स्वका ग्रहण हो जाता है, तब पर भिन्न है वह सहज ही जाननेमें रह जाता है, उसे भिन्न करना ऐसी कोई नयी भिन्न प्रक्रिया नहीं करनी पड़ती। स्वमें नहीं है इसलिये स्वमें अनुभवमें नहीं होता है। स्वमें अनुभव नहीं होता है।

जैसे जागृत हुआ तब मालूम पड़ा कि स्वप्नमें जितनी वस्तुएँ देखी, अनुभव किया उतनी वास्तवमें नहीं है। वास्तवमें नहीं है इसलिये वह अनुभव जूठा था। स्वप्नकी मिठाईसे पेट नहीं भरता। पूज्य बहिनश्रीने एक दृष्टान्त दिया है। भूखा सो गया हो, तीव्र क्षुधा लगी हो, कहीं भी आहारका योग हो ऐसी परिस्थिति न हो, अत्यंत दरिद्रता हो, भूखे-भूखे थककर सो जाय। और जागृत अवस्थामें ऐसी कल्पना की हो कि इतनी भूख लगी हो ऐसेमें मिठाई मिले तो कितनी खा जाऊँ। मिठाई तो मिली नहीं है, लेकिन निद्रामें मिठाई खाई। इतनी खाई, इतनी खाई मानों तृप्त हो गया। डकार खाता है, उतनेमें आँख खूल गई। देखता है, पेट तो उतना ही खाली है, जितना खाली था। पूरा खाली है। उससे कोई भूख मिटती नहीं। वैसे यह जीव पंचेन्द्रिय विषयोंका भोग-उपभोग अनन्त कालसे ऐसा मानता है कि मैं तृप्त होऊँ, यह प्राप्त करूँ, इसको भोगूँ, इससे तृप्त होऊँ लेकिन उसके स्वप्नकी भूख मिटती नहीं है। क्योंकि खाली ही रहता है। एक रजकण भी आत्मामें आता नहीं। आत्माको स्पर्श तक नहीं करता।

... अच्छा-अच्छा खाना खाया, बहुत अच्छा खाया, लेकिन तेरेमें क्या आया, देख तो सही। जब खाया तब भी तेरेमें कुछ नहीं आया है। तू खाली ही है। जिस परपदार्थसे तू शून्य है, जिस परपदार्थसे तू अभावस्वभावी है, अभावस्वरूप है, वह ज्योंका त्यों उससे वैसा ही रहता है, शून्य और अभावरूप ही रहता है। कभी भी कल्पना करके, मुझे प्राप्त हुआ ऐसी कल्पना करता है उस वक्त भी वह भ्रमणामें ही है, स्वप्नमें ही है। उसकी जागृत जो चैतन्यकी स्थिति होनी चाहिये वह नहीं है, इसलिये उसे ख्याल नहीं आता है। बाकी तो वास्तवमें ज्ञानमें-चैतन्यमें एक रजकणका किसी भी कालमें स्पर्श होना, मिश्र होना हो नहीं सकता। उसे जो भिन्न रखता है, उसे भेदज्ञान हुआ ऐसा कहनेमें आता है। यह सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेकी रीत है। यही सम्यग्दर्शनमें मोक्षमार्गमें

विशेष विकार करके पूर्णता तक जानेकी रीत है।

'**चैतन्यलक्षण द्वारा स्वको लक्षित करते ही ध्रुवके पूर (प्रवाह) पर लक्ष्य जाता है।**' विशेष बात क्या कहते हैं? कोई तर्क नहीं करे इसलिये वह बात साथ-साथ ली है। यहाँ ज्ञानका जो प्रकाश है, जिसमें स्वका जानना होता है और जिसमें परपदार्थ प्रतिबिंबत होता है, वह तो पर्याय है। और पर्यायका तो हमें आश्रय नहीं करना है, ऐसा हम सत्शास्त्रमें समझे हैं कि पर्यायका आश्रय नहीं लिया जाता। वह तो व्यवहारनयका विषय है। पर्याय सुद्धा, शुद्धपर्याय हो, अशुद्धपर्याय हो, समस्त पर्याय व्यवहारनयका (विषय है)। जहाँ गुणभेद व्यवहारनयका विषय है, वहाँ पर्याय तो व्यवहारनयका विषय है ही, उसमें कोई चर्चा करनेका प्रश्न नहीं रहता।

कहते हैं कि यहाँ जहाँ चैतन्यलक्षण प्रगट पर्यायमें है उस लक्षण द्वारा उसे अर्थात् आत्माको लक्षित करनेसे आत्माका जो ध्रुव स्वभाव है उस पर लक्ष्य जाता है, पर्याय पर लक्ष्य रहता नहीं। भेदज्ञान भले ही पर्यायमें होता है, तो भी लक्ष्य पर्याय पर नहीं रहता। ऐसा है। रास्ते पर ध्यान रखकर ट्राफिकसे बचता है, तो भी उसका लक्ष्य है वह ट्राफिक पर नहीं है। उपयोग है फिर भी लक्ष्य नहीं है। ठीक! उपयोग हो इसलिये लक्ष्य है, ऐसा कुछ नहीं है। लक्ष्य कहीं हो, और उपयोग कहीं और हो। ऐसा बनता है कि नहीं? ऐसा परिपूर्ण जो ध्रुवका प्रवाह है, यहाँ ध्रुवको बाढ़के रूपमें लिया है। बाढ़में शक्ति बहुत होती है। बाढ़को रोका नहीं जाता। नदीमें आती है न? भारी बाढ़ आती है। खाली नदी हो उसमें एक-दो पुरुषकी ऊँचाई जितना बडा प्रवाह चला आता हो, एकदम खाली नदी हो गर्मीमें, ऊपर बारीश हुई हो तो पानी इकट्ठा होकर उसका प्रवाह एक-दो मनुष्यकी ऊँचाई जितना होता है, खाली नदीमें पानी आता है। एक सेकंडमें तो पानी-पानी.. दोनों किनारे पानी भर जाता है। इतनी भारी बाढ़ कहाँ-से आयी? वह बाढ ऊपरसे आयी है।

वैसे अन्दरमें जो ध्रुवमें शक्ति भरी है, आत्माके ध्रुव स्वभावमें शक्ति भरी है अथवा शक्ति जो ध्रुव स्वभावरूप है उसमें-से पर्यायमें बाढ़ आती है। ज्ञानका, आनन्दका, अनन्त शक्तिका उछाला आता है। पुरुषार्थका वेग और बाढ़ उत्पन्न होता है। वह ध्रुवमें बाढ़ भरी है उसमें-से आती है, ऐसा कहना है। शक्तिमें-से शक्तिकी व्यक्ति होती है। इसलिये ध्रुव ध्रुवरूप होने पर भी उसका एक रूप है वह दर्शाते हैं कि उसमें बाढ़ है ऐसा उसका रूप है।

उसे '**लक्षित करते ही ध्रुवके पूर (प्रवाह) पर लक्ष्य जाता है।**' अर्थात् ध्रुव खाली नहीं है। ध्रुव है, ध्रुव है... आत्मा ध्रुव है ऐसे नहीं, अनन्त शक्तिका सामर्थ्य जिसमें बाढ़ भरी है, ऐसा ध्रुव है। उस पर लक्ष्य जाता है। और मात्र ऊपरके चैतन्यलक्षण परसे पूरा लक्ष्य अन्दरमें होता है। अनित्य लक्षण है, फिर भी पूरे नित्यको वह उसपर-से ग्रहण कर लेता है। एक अवयव परसे पूरे अवयवी को पकड़ता है। यह श्रुतज्ञानमें सामर्थ्य है।

जो श्रुतज्ञान चैतन्यलक्षण द्वारा परिपूर्ण-पूर्ण अनन्त सामर्थ्यवंत पूर्ण ऐसे आत्मद्रव्यको लक्ष्यमें लेता है, ज्ञानमें लेता है, जिसमें अनन्त-अनन्त केवलज्ञानकी पर्यायोंका सामर्थ्य भरा है, गुरुदेवश्री तो बहुत स्पष्ट भाषामें कहते थे कि जिसके पेटमें अनन्त सिद्धपर्याय भरी हैं, केवलज्ञानकी पर्याय भरी है, ऐसे शुद्धात्माको जो लक्ष्यमें और ज्ञानमें लेता है, ज्ञानमें लेता है। समयसारकी ९-१० गाथामें तो उसे श्रुतकेवली कहा है। जो केवल ज्ञानस्वरूपी आत्माको जानता है वह श्रुतकेवली है। किसने उसे श्रुतकेवली कहा है? कि ऋषीश्वरोंने उसे श्रुतकेवली कहा है। मूल भाषा ऐसे ली है। सूत्रकी भाषा ऐसी है। ऋषीश्वर उसे श्रुतकेवली कहते हैं। सम्यग्दृष्टिकी महिमा आचार्योंने कितनी की है!

अनादिसे जिसने शुद्धात्माको विषय नहीं किया है, वह जब श्रुतज्ञानमें शुद्धात्माको विषय करता है तब ऐसा कहते हैं कि वह तो श्रुतकेवली हुआ. भावश्रुतकेवली हुआ। फिर द्रव्यसे तो भले वह केवलीको सुनेगा तब द्रव्यश्रुतकेवली कहे। केवलीको सुनेगा तब द्रव्यश्रुतकेवली कहते हैं। केवलीको सुना

इसलिये श्रुतकेवली कहा। जिसे केवलीने श्रवण करवाया वह श्रुतकेवली। उसके बराबर कैसे हुआ? जिसने सर्व श्रुतज्ञानको जाना, बारह अंग जाना। केवलीको सुननेपर जिसने बारह अंग जाना। गणधर पदवी बारह अंगको जानते हैं। वह श्रुतकेवली है, गणधर श्रुतकेवली है। यहाँ सम्यग्दृष्टि श्रुतकेवली है, ऐसा कहते हैं। कैसी बातें ली है!

गाथार्थ इसप्रकार है। '**जो जीव निश्चयसे (वास्तवमें) श्रुतज्ञानके द्वारा इस अनुभवगोचर केवल एक शुद्धात्माको सम्मुख होकर जानता है,...**' '**अभिगच्छति**' ऐसा लिया है। विकल्पसे जाने ऐसा नहीं। रागके सन्मुख रहे, शास्त्र सन्मुख रहे और आत्मा ऐसा है ऐसा जाने, ऐसा जानना नहीं, '**अभिगच्छति**' अभि अर्थात् सन्मुख होना। जो '**अनुभवगोचर केवल एक शुद्ध आत्माको सम्मुख होकर जानता है उसे लोकको प्रगट जाननेवाले ऋषीश्वर...**' ये जिनेन्द्र हैं। मुनिश्वर है, मुनि होनेसे मुनिश्वर हैं, ऋषी होनेसे ऋषीश्वर हैं। ऋषिओंमें ईश्वर, मुनिओंमें ईश्वर। लोकको प्रगट जाननेवाले ऐसा कहा। वह तो केवलज्ञानके सिवा लोकालोक प्रगट ज्ञात नहीं होता। इसलिये लोकको प्रगट जाननेवाले, ऐसा कहा। ऐसा उपनाम दिया है। '**लोयप्पदीवयरा**' मागधिमें मूल शब्द ऐसा है-'**लोयप्पदीवयरा**'। '**लोकको प्रगट जाननेवाले ऋषीश्वर श्रुतकेवली कहते हैं,...**' ऐसे आत्माको श्रुतकेवली कहा गया है। कितनी बड़ी पदवी दी उसे! वह भावश्रुतकेवली है।

'**जो जीव सर्व श्रुतज्ञानको जानता है...**' उसके बाद दूसरे श्रुतकेवलीकी बात करते हैं। '**उसे जिनदेव श्रुतकेवली कहते हैं,...**' वहाँ '**जिनाः**' ऐसा शब्द पड़ा है। '**उसे जिनदेव श्रुतकेवली कहते हैं, क्योंकि ज्ञान सब आत्मा ही है, इसलिये (वह जीव) श्रुतकेवली है।**' सर्व श्रुतको जानता है। जो जीव सर्व श्रुतज्ञानको जानता है वह श्रुतकेवली है। जो जीव शुद्धात्माको जानता है वह भी श्रुतकेवली है। यहाँ चतुर्थ गुणस्थान प्रगट हुआ। वह जीव श्रुतकेवली हुआ। ऐसा है। ये तो भगवानके श्रीमुखसे बात ली। ऋषीश्वरोंने ऐसा कहा है। लोकको जाननेवाले ऐसे ऋषीश्वरोंने। अज्ञानी ऋषीश्वर नहीं। लोकालोकको जाननेवाले जो ऋषीश्वर है, उन्होंने यह बात की है। ऐसे लिया है।

मुमुक्षु :- लोकालोकको जाननेवाले तो केवली हैं न?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, केवली हैं। केवलीको जिनेन्द्र कहनेमें आता है, मुनिन्द्र कहनेमें आता है। मुनिओंमें इन्द्र हैं। मुनिश्वर कहनेमें आता है, ऋषीश्वर कहनेमें आता है। हजारों नामसे कह सकते हैं। जितनी-जितनी उसकी उपमा लागू पड़ती है, उन सब नामसे कह सकते हैं।

यहाँ क्या बात की? अंतिम वाक्य जो है, वह इससे विशेष बात की है चलते बोलमें। '**चैतन्यलक्षण द्वारा स्वको लक्षित...**' करने पर। वर्तमानमें तुझे प्रगट चैतन्यलक्षण है, ऐसा कहते हैं। चेतना अर्थात् अनुभव करना। तेरा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा उसमें किसी अन्यका अनुभव होना असंभव है। अनुभव तो होता है न? तुझे तेरा ही अनुभव हो रहा है। लेकिन तुझे उसका स्वीकार नहीं है, तुझे ऐसा स्वीकार है कि मुझे परपदार्थका अनुभव होता है। दाल-चावल, सब्जी-रोटीका अनुभव होता है, ठण्डी-गर्मीका अनुभव होता है। कहते हैं कि तुझे तेरा ही अनुभव होता है, अन्यका अनुभव तुझे नहीं होता है।

अन्य ज्ञात होता है। ज्ञानमें परपदार्थ ज्ञात होते हैं तब भी अनुभवकी प्रधानतासे उस ज्ञानका विचार किया जाय तो ज्ञानको ज्ञानका अनुभव होता है। ज्ञानमें परका अनुभव हो नहीं सकता। ऐसा जो चैतन्यलक्षण है वह प्रगट लक्षण है। उसके द्वारा ध्रुव चैतन्य पर लक्ष्य जाता है। लक्षणसे लक्ष्य पर लक्ष जाता है। लक्षणसे लक्ष्य, लक्ष्य, लक्ष और लक्षण तीन शब्द हैं। लक्षमें क्ष पूरा है, और लक्ष्यमें क्ष आधा है और य पूरा है-लक्ष्य। लक्षणसे लक्ष्यमें आने योग्य उसे लक्ष कहनेमें आता है। लक्षण पर लक्ष नहीं रहता परन्तु लक्षणको जानने पर लक्ष्य पर

लक्ष जाता है। यह लक्षणसे लक्ष्यको वास्तवकि रूपसे जाननेकी पद्धति है।

जैसे घरमें छीपे चोरका एक अँगूठा दिख जाय, छः फिटका दरवाजा हो, लेकिन नीचेसे ऊँचा हो, एक अँगूढा दिख जाय तो एक अवयव नहीं दिखा है, पूरा चोर ज्ञानमें आया है। आदमीके बिना अँगूठा कैसे होगा? वैसे चैतन्यलक्षण, अन्दर चैतन्यस्वभावी आत्माके बिना चैतन्यलक्षण कहाँ-से आया? ऐसा कहते हैं। लक्षण भले एक समयका, एक क्षणका प्रगट है, परन्तु पूरा जो चैतन्यस्वभाव है उसका वह लक्षण है। लक्षण लक्ष्यको प्रसिद्ध करता है। लक्षणमें मात्र लक्षणकी प्रसिद्धि नहीं है, परन्तु पूरे लक्ष्यकी प्रसिद्धि है। वह तो पूरा प्रकरण लिया। अमृतचन्द्राचार्यदेवने समयसारकी टूका पूर्ण करनेके बाद उनको यह बात लिखनेका विचार हुआ कि पूरे शास्त्रमें बहुत बातें की है। ४१५ गाथामें महान परमागमकी टीका पूर्ण करते हैं, फिर भी उनको एक बात कहनी बाकी रह गई हो अथवा कही है तो भी विशेषरूपसे कहनी है ऐसा कहकर लक्ष्य-लक्षणका अधिकार वापस लिखा है। है? ज्ञानलक्षण द्वारा, वेदनसे प्रसिद्ध है ऐसे ज्ञानलक्षण द्वारा स्वसंवेदनसे प्रसिद्ध है, वेदनसे नहीं अपित स्वसंवेदनसे प्रसिद्ध है ऐसे ज्ञानलक्षण द्वारा पूरा आत्मा भिन्न लक्ष्यमें आता है। पूरा आत्मा भिन्न ज्ञात होता है।

कहते हैं कि '**ध्रुवके पूर (प्रवाह) पर लक्ष्य जाता है।**' वह पूर्ण आत्मतत्त्व है। जो साक्षात् सिद्धपदस्वरूप है, जो परिपूर्ण शुद्धात्मपद है उस पर लक्ष्य जाता है। लक्ष्य जाता है तब उसकी पहचान होती है। पहचान होती है तबसे उसकी भिन्नताका जो अभ्यास है वह वास्तविकरूपसे चालू होता है। और उस अभ्यासके फलमें बारंबार अनुभव-दशा आती है। उसे यहाँ मोक्षमार्ग कहनेमें आया है। मोक्षका उपाय कहो या मोक्षका मार्ग कहो। ऐसा नहीं है कि पर्याय पर भेदज्ञान करता है इसलिये राग और ज्ञान, राग और ज्ञान ऐसे पर्याय पर लक्ष्य रहता है, ऐसा समझने योग्य नहीं है। पूरे भेदज्ञानका जो विषयहै उसमें लक्ष्य त्रिकाली ध्रुव पर है और भेदज्ञानकी प्रक्रिया पर्यायमें होती है और ख्यालमें और बुद्धिमें आये उस तरहसे स्वभाव एवं विभाव भिन्न पड़ते हैं। स्वभाव भिन्न पड़ता है और विभाव भिन्न पड़ता है। वह २५९में १८१ कलश ऊपरका बोल है। २५९ पूरा हुआ।

करुणासागर पूज्य भाईश्री 'शशीभाई' की ८६वीं जन्म-जयंती

मुमुक्षुजीवों के परम तारणहार पूज्य भाईश्री शशीभाई का आगामी ८६वी जन्म जयंती महोत्सव मार्गशीर्ष शुक्ल-४, दि. ११-१२-१८ से मार्गशीर्ष शुक्ल-८, दि. १५-१२-१८ पर्यंत अत्यंत आनंदोल्लासपूर्वक मनाया जायेगा। इस प्रसंग पर मंडल विधान पूजन, पूज्य भाईश्री के ऑडियो एवं विडीयो सी.डी. प्रवचन, पूज्य गुरुदेवश्री के विडीयो सी.डी. प्रवचन, भक्ति, सत्संग, सांस्कृतिक कार्यक्रम रहेंगे और दि. १४-१२-२०१८ के दिन जिनेन्द्र रथयात्रा का कार्यक्रम रहेगा। इस प्रसंग पर आनेवाले मुमुक्षु ट्रस्ट के कार्यालय में यहाँ पर पहुँचने की तारीख लिखें, जिससे उनकी आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था हो सके।

कार्यक्रम स्थल :- श्री शशीप्रभु साधना-स्मृति मंदिर, प्लोट नं. १९४२-बी, शशीप्रभु चोक, रूपाणी सर्कल के पास, भावनगर-३६४००१

संपर्क : श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणेकवाड़ी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४००१.

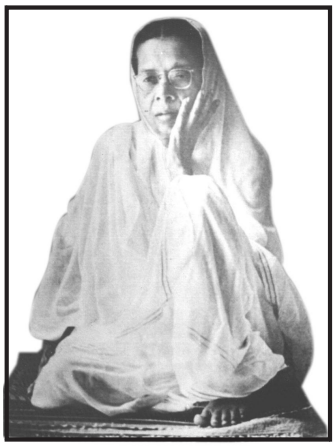

पूज्य बहिनश्री की वीडियो तत्त्वचर्चा
मंगल वाणी-सी.डी.१ A

प्रश्न :- उसकी महत्ता आ गई है।

समाधान :- महिमा उसकी लगती है, महत्ता उसकी लगती है। चैतन्य की महत्ता लगती नहीं। महत्ता लगनी चाहिये। चैतन्य ही... आश्चर्यभूत और महिमावंत पदार्थ हो तो जगत में एक चैतन्य आत्मा है। और जिसने ऐसा आत्मा प्रगट किया ऐसे जो जिनेन्द्र भगवान, वे महिमावंत हैं और उसकी साधना करनेवाले गुरु महिमावंत हैं, बाकी कोई महिमावंत नहीं है और महिमावंत मेरा आत्मा है। बाकी कोई महिमावंत नहीं है। उसकी महिमा लगे तो टूटे। महिमा लगे तो निरसता आ जाय, तो टूट जाय। मात्र विचार किया करे, रूखे विचार किया करे तो टूटे नहीं।

प्रश्न :- आपके वचनामृत में आता है कि जीवन आत्मामय बना लेना चाहिये, वह कैसे?

समाधान :- हाँ, जीवन आत्मामय ही बना लेना चाहिये। यह पूरा जीवन रागमें विकल्पमय है, उसके बदले आत्मामय जीवन (बना लेना चाहिये)। बस, मैं आत्मा हूँ। यह शरीर सो मैं नहीं, मैं तो आत्मा हूँ, मैं तो चैतन्यमूर्ति (हूँ), चैतन्यता-चैतन्यका स्वरूप वही मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ। इस प्रकार आत्मामय जीवन.. उसे कदम-कदम पर आत्मा ही याद आता है कि यह सब कुछ नहीं है, यह सब बाह्य परद्रव्य है। मेरा आत्मा भिन्न है, मैं तो चैतन्य हूँ, उसके आश्रित जो विचार आये वह सब विचार निरर्थक हैं, कुछ सारभूत नहीं है। मैं तो एक चैतन्य हूँ। आत्मामय जीवन ऐसा सहजरूप (हो जाना चाहिये)। भावना से करे, पहले तो सहज होना मुश्किल पड़ता है, प्रयत्नसे करे, लेकिन आत्मामय जीवन हो जाय तो सब छूट जाय। तो उसकी एकत्वबुद्धि टूट जाय, तो सब टूटने का अवकाश है। आत्मामय जीवन बना लेना चाहिये। अंतर दृष्टि करके मैं तो आत्मा हूँ, ये सब बाहर दिखता है वह सब मैं नहीं, मैं तो अंतर में कोई अलग ही चैतन्यद्रव्य हूँ। यह सब बाहर में दिखता है वह मैं नहीं। बाहर में मान लिया है कि ऐसा शरीर वह मैं, यह सब मैं, बाहर की कल्पना में यह घर, कुटुम्ब, सब अपना माना है, वह सब मैं नहीं, मैं तो चैतन्य आत्मा हूँ।

अनन्त काल में बहुत किया। सब विचार किया, वैराग्य किया, सब किया लेकिन यथार्थ नहीं किया है (अर्थात्) आत्मा को समझकर नहीं किया है। मैं तो आत्मा हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है। स्वयं का अस्तित्व ग्रहण करके जो वैराग्य आये, जो विचार आये.. स्वयं का अस्तित्व ग्रहण करना चाहिये कि मैं तो आत्मा हूँ। ऐसा सहजरूपसे करनेका प्रयत्न करे। पहले सहज नहीं होता लेकिन सहज करनेका प्रयत्न करे। यह उदयभाव मैं नहीं हूँ, मैं तो पारिणामिकभावसे रहनेवाला चैतन्यस्वरूप आत्मा पारिणामिकभाव मेरा स्वरूप है, यह मेरा स्वरूप नहीं है।

प्रश्न :- श्रीमद्में ऐसा आता है कि पात्रताके लिये विशेष प्रयत्न रखना। तो उस पात्रतामें कैसी विशेषता होनी चाहिये?

समाधान :- पात्रता अर्थात् स्वयं आत्मा को ग्रहण किसप्रकार करना? उसके लिये पात्रता विशेष (होनी चाहिये)। किसी भी प्रकारकी तन्मयता नहीं हो। आत्मा की महिमा छूटकर बाहरकी कोई महिमा

नहीं आये, बाहरकी कोई वस्तु आश्चर्यभूत लगे नहीं, एक आत्मा ही जिसे आश्चर्यभूत लगे, बाहरकी कोई चीज आत्मा से अधिक नहीं हो जाती, एक मेरा आत्मा ही सर्वोत्कृष्ट है। देव-गुरु-शास्त्र और एक आत्मा, उनसे कुछ विशेष लगे नहीं। विशेष ऐसे निष्प्रयोजनमें विशेष एकत्व हो जाय, तन्मय हो जाय, बाहरके कोई-कोई प्रसंगमें कषायके रसमें एकत्व, विशेष तन्मय हो जाय, वह सब आत्मार्थीको, जिसे आत्माका प्रयोजन है, उसको वह सब मन्द हो जाता है। अनंतानुबंधीका रस मंद पड़ जाता है। तत्त्व कैसे ग्रहण हो, उस प्रकार की जिज्ञासा रहती है। बाहरमें कहीं भी विशेष तन्मयता नहीं हो जाती, आत्मा छूटकर विशेषपने कहीं भी रस, सांसारिक कार्योमें उसे आत्माके अतिरिक्त अधिक रस आ जाये (ऐसा नहीं बनता)। आत्मा जिसका प्रयोजन रहता है, ऐसी उसकी पात्रता होती है। आता है न? विशालबुद्धि, मध्यस्थता आदि तत्त्व प्राप्त करनेका उत्तम पात्र है। अंतरंग जाननेमें आता है। कहीं भी रागमें खींचाता नहीं, कहीं द्वेषमें एकदम (तन्मय) हो जाये ऐसा नहीं होता। सभी (प्रसंग) में मध्यस्थ रहे। उसे सब छूट नहीं जाता लेकिन सब रस टूट जाता है और सब मर्यादित हो जाता है।

सम्यग्दृष्टि तो भेदज्ञान होनेपर भिन्न हो जाता है, जुदा हो जाता है, इसलिये उसको तो सब मर्यादामें आ जाता है। अनंतानुबंधीका रस छूट गया, न्यारा हो गया। भेदज्ञान हो गया इसलिये वह भिन्न ही रहता है, एकत्व होता नहीं, इस प्रकार भिन्न रहता है। लेकिन पात्रतामें भी वह किसी भी प्रकारके विकल्पमें विशेषरूपसे तन्मय नहीं होता। उसे भी भावना तो आत्माकी ही है, आत्माका ही प्रयोजन मुख्य रहता है, उसे प्रयोजन मुख्य है। सम्यग्दृष्टिको ज्ञायकता की धारा चलती है। लेकिन इसे आत्मा प्रगट करना है इसलिये सब ओरसे रस छूटकर विशेष कहीं तन्मय होता नहीं। कोई विकल्पोंमें, कोई बाह्य कार्यमें, किसी भी प्रकारके घर, कुटुम्बमें विशेष तन्मय (नहीं हो जाता)। रस कहीं (नहीं आता), कार्यमें जुड़ता है लेकिन रसमें तन्मय नहीं हो जाता। आत्माका प्रयोजन ही जिसे मुख्य रहता है। कषायनी उपशांतता मात्र मोक्ष अभिलाष। मात्र मोक्षकी ही जिसे अभिलाषा है, मुक्तिकी अभिलाषा है। प्रत्येकमें जिसे आत्माका ही प्रयोजन रहता है।

प्रश्न :- माताजी! जिसे आत्माका प्रयोजन रहे उसे मध्यस्थता, जितेन्द्रियता का मेल होता होगा?

समाधान :- हाँ, सबका मेल होता है। सरलता होती है, सबका मेल होता है। विशेषरूपसे कहीं लिप्त नहीं होता। आत्माका प्रयोजन होता है। उसके अंतरंग परिणाम समझ सके, विशेषरूपसे कहीं लिप्त नहीं होता। आत्माको छोड़कर उसे कहीं भी विशेष रस नहीं आता। उसे, मेरा आत्मा ही सर्वोत्कृष्ट है, मुझे आत्मा नहीं मिले तो यह सब.... आत्मा कैसे प्राप्त हो वही उसको भावना रहती है। यह सब निःसार है, उसे कहीं भी रस नहीं आता। उसे विशेष रस कहीं नहीं आता।

आत्माका ही करने जैसा है, वह सब विचार कर और ज्ञानस्वभावका यथार्थ (निर्णय करना)। यह ज्ञानस्वभाव ही मैं हूँ, ऐसा निर्णय किया। लेकिन निर्णय किया परंतु बादमें अन्दरसे रुचि मन्द पड़ जाय तो निर्णयमें फ़र्क़ पड़ जाये। आत्माकी ओरका पुरुषार्थ, जिज्ञासा और लगनी वैसी की वैसी हो तो निर्णयमें फ़र्क़ नहीं पड़ता। प्रत्येक भूमिकामें पुरुषार्थ तो होता ही है। सम्यग्दर्शन प्राप्त होने के बाद भी उसे पुरुषार्थ होता है। प्रत्येक भूमिकामें साधकदशामें पुरुषार्थ होता है, तो जिसे आत्माकी रुचि हुई उसमें भी पुरुषार्थ तो साथ होता ही है। जिसने आत्माका निर्णय किया कि आत्माका ही करने जैसा है, ऐसा निर्णय किया और निर्णय करनेमें यदि अन्दरसे बराबर निर्णय करे तो वह पलटता नहीं। लेकिन यदि उसमें वह पलट जाय, पुरुषार्थ पलट जाय तो (निर्णय) बदल जाये।

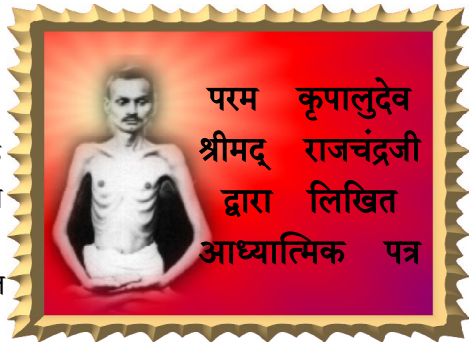

१७३

बंबई, कार्तिक वदी ३, शनि, १९४७

जिज्ञासु भाई,

आपका पहले एक पत्र मिला था, जिसका उत्तर अंबालालके पत्रसे लिखा था। वह आपको मिला होगा। नहीं तो उनके पाससे वह पत्र मँगवाकर देख लीजियेगा।

समय निकालकर किसी न किसी अपूर्व साधनका कारणभूत प्रश्न यथासम्भव करते रहियेगा।

आप जो-जो जिज्ञासु हैं, वे सब प्रतिदिन अमुक समय, अमुक घड़ी तक धर्मकथार्थ मिलते रहें तो परिणाममें वह लाभका कारण होगा।

इच्छा होगी तो किसी समय नित्य नियमके लिये बताऊँगा। अभी नित्य नियममें साथ मिलकर एकाध अच्छे ग्रन्थका अवलोकन करते हों तो अच्छा। इस विषयमें कुछ पूछेंगे तो अनुकूलताके अनुसार उत्तर दूँगा।

अंबालालके पास लिखे हुए पत्रोंकी पुस्तक है। उसमेंसे कुछ भागका उल्लासयुक्त समयमें अवलोकन करनेमें मेरी ओरसे आपके लिये अब कोई इनकार नहीं है। इसलिये उनके यथासमय पुस्तक मँगवाकर अवलोकन कीजियेगा।

दृढ़ विश्वाससे मानिये कि इसे व्यवहारका बंधन उदय कालमें न होता तो आपको और दूसरे कई मनुष्योंको अपूर्व हितकारी सिद्ध होता। प्रवृत्ति है तो उसके लिये कुछ असमता नहीं है; परन्तु निवृत्ति होती तो अन्य आत्माओंको मार्गप्राप्तिका कारण होता। अभी उसे विलंब होगा। पंचमकालकी भी प्रवृत्ति है। इस भवमें मोक्षगामी मनुष्योंकी संभावना भी कम है। इत्यादि कारणोंसे ऐसा ही हुआ होगा। तो इसके लिये कुछ खेद नहीं है।

आप सबको स्पष्ट बता देनेकी इच्छो हो आनेसे बताता हूँ कि अभी तक मैंने आपको मार्गके मर्मका (एक अंबालालके सिवाय) कोई अंश नहीं बताया है; और जिस मार्गको प्राप्त किये बिना किसी तरह किसी कालमें जीवका छूटकारा होना सम्भव नहीं है। यदि आपकी योग्यता होगी तो उस मार्गको देनेमें समर्थ कोई दूसरा पुरुष आपको ढूँढ़ना नहीं पड़ेगा। इसमें किसी तरह मैंने अपनी स्तुति नहीं की है।

इस आत्माको ऐसा लिखना योग्य नहीं लगता, फिर भी लिखा है।

अंबालालका अभी पत्र नहीं है, उनसे लिखनेके लिये कहें। **वि. रायचन्दके यथायोग्य।**

१७४

बंबई, कार्तिक वदी ४, सोम, १९४७

संतकी शरणमें जा।

सुज्ञ भाई श्री अंबालाल,

आपका एक पत्र मिला। आपके पिताश्रीका धर्मेच्छुक पत्र मिला। प्रसंगवश उन्हें योग्य उत्तर देना हो सकेगा। ऐसी इच्छा करूँगा।

सत्संग यह बड़ेसे बड़ा साधन है।

सत्पुरुषकी श्रद्धा के बिना छूटकारा नहीं है।

ये दो विषय शास्त्र इत्यादिसे उन्हें बताते रहियेगा। सत्संगकी वृद्धि कीजियेगा।

वि.रायचन्दके यथायोग्य।